

निःशब्दता और धार्मिक मन

मानव-विज्ञानियों द्वारा की गई खोजों से ज्ञात होता है कि गत दो लाख वर्षों या उससे भी अधिक समय पहले से मनुष्य निरंतर इस अनित्य संसार से किसी भिन्न तरह के देवता की, या किसी दिव्य तत्त्व की खोज करता आ रहा है; इस खोज के दौरान वह सदैव अपनी कल्पना से किसी ऐसी वस्तु को रचता आ रहा है जो नित्य हो, जिसे आसानी से मिटाया न जा सके। उसने ऐसी प्रतिमाओं और प्रतीकों का निर्माण किया जिन्हें उसने अपनी कल्पना के अनुसार, जीवन के प्रति अपनी काव्यमयी दृष्टि के अनुसार, अपनी सीमितताओं, भयों, आशाओं और जीवन की अनेक यंत्रणाओं आदि के अनुसार विभिन्न रूपों में उकेरा। और अपने हाथों से उकेरकर बनायी गयी, या मन से सृजित इन प्रतिमाओं को वह पूजने लगा, वह उनकी अर्चना करने लगा, दिन-प्रतिदिन वह उनके समीप जाने लगा और मौसम, मृत्यु, रोग और उन सारी विपदाओं से त्राण मिलने की आशा-अपेक्षा वह उनसे करने लगा जो उसे पीढ़ियों से विरासत में मिलती रही हैं।

और एक ऐसे उद्धारकर्ता की, एक ऐसे ईश्वर की निरंतर खोज के लिए, जिसे कल्पना या विचार ने जन्म नहीं दिया है, वह कर्मकाण्डों के माध्यम से, मन्दिरों-तीर्थों में जाते रहकर, दिन-प्रतिदिन लगातार कुछ खास क्रिया-कलापों और विधि-विधानों का सहारा लेता हुआ उसे ढूँढ़ने का प्रयत्न करता रहा है, यहाँ तक कि आवश्यक प्रतीत होने पर उसने अपने-आपको किसी प्रकार के रहस्यवाद में, किसी तरह के अतीन्द्रिय दर्शन में, प्रज्ञा की किसी उच्चतर भावना में गहराई तक निमग्न करने का प्रयास भी किया है।

और यह आवश्यक है कि वास्तविकता का पता स्वयं ही लगाया जाए, संस्कृति के मृत अतीत को पुनर्निर्मित करना ही पर्याप्त न होगा। क्योंकि जिसे पुनर्निर्मित किया जा रहा है वह पूरी तरह जा चुका है, और उसे पूजते रहना, आधुनिक संसार में पुनः उसे निर्मित करना निरर्थक है, शायद ही उसमें कोई सार रह गया हो। परन्तु फिर भी हम यही कर रहे हैं। हमारे जीवन में उपस्थित यातना का हमें जब कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं मिल पाता, तो हम कहीं सुदूर अतीत में लौट जाने का, उसको पुनर्निर्मित करने का प्रयास करने लगते हैं, स्मृति के माध्यम से, गहन संस्मरणों के सहारे, छल और अभ्यास के हर संभव प्रयास से उसे पुनः पा लेने की चेष्टा करने लगते हैं।

परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अतीत का पुनर्सृजन करते रहना, सदियों से सुस्थापित किसी व्यवस्था का दृढ़ता से पालन करना, मन्दिरों, उनके विधि-विधानों, उनके संगठित विश्वासों, उनकी विवेकहीन मान्यताओं, संपत्तियों और विशाल समृद्धि, इन सबका अनुचित इस्तेमाल सचमुच आश्चर्यचकित कर देता है। यदि आप इस बारे में गहराई से जाँच-पड़ताल करेंगे, स्वयं ही इसका अवलोकन करेंगे, तो पाएंगे कि हमारे इस जीवन की - क्लेश, निराशा, अपूर्णता और भय से पूर्ण हमारे दिन-प्रतिदिन लिए जानेवाले इस जीवन की - वस्तुतः कोई सार्थकता नहीं है।

इसलिए धर्म नहीं, बल्कि धार्मिक मन क्या होता है, धार्मिक मन जैसी कोई चीज होती है अथवा नहीं - इसका पता स्वयं को ही लगाना होगा। इसका पता लगाने हेतु

हमें उन सारी मूढ़ताओं को छोड़ देना होगा, उन सारे उद्धारकर्ताओं, उन विधि-विधानों सहित शब्दों की उन अन्तहीन पुनरावृत्तियों को परे हटा देना होगा, जिन्हें पुरोहितों द्वारा रचा गया है, हमें उस सबको पूर्णतः छोड़ना होगा और इस दिशा में नये सिरे से शुरुआत करनी होगी। इस शुरुआत का एकमात्र तरीका यही है कि संगठित-विश्वास, कर्मकाण्ड, तथाकथित पवित्र पुस्तकें मानों कभी थी ही नहीं, मानों आपने उन्हें कभी पढ़ा ही नहीं था, आप ऐसा समझें। वास्तव में दैनिक जीवन में उनकी ज़रा भी सार्थकता नहीं है। हमारे लिए तो सार्थक है संघर्ष, क्लेश और पीड़ा से भरा हमारा प्रतिदिन का जीवन - अपनी देह, हृदय और मन के क्रियाकलापों से परे जा सकने की हमारी असमर्थता।

हमारा जीवन छोटे से दायरे में सीमित रहता है, अत्यन्त क्षुद्र होता है, चारों ओर से अनेक चीज़ों से, परिस्थितियों से, भय से घिरा रहता है। क्या मनुष्य के लिए यह संभव है कि वह उन सबसे परे जा सके ? वस्तुतः मौलिक रूप से यही विचारणीय है - ईश्वर है या नहीं है, आप विश्वास करते हैं या नहीं करते, इन चीज़ों का ज़रा भी महत्त्व नहीं है। आप विश्वास करते हैं या नहीं, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। आपका विश्वास तो आपके संस्कारों का परिणाम होता है। यदि आपका जन्म मुस्लिम, क्रिश्चियन या हिन्दू के रूप में हुआ है तो आपका समाज आपकी सोच को, आपके विश्वास को, आपके विचारों को, आपकी भावनाओं को उन विशिष्ट साँचों में ढाल देता है। और साम्यवादी जगत में इस सब पर विश्वास ही नहीं किया जाता - वे सोचते हैं कि आप बकवास कर रहे हैं।

इसलिए वास्तव में पता लगा सकने के लिए यह आवश्यक है कि अपने-आपको इन सबसे अलग कर लिया जाए और इस सारी नासमझी का गहन विश्लेषण किया जाए, गहरी चीरफाड़ की जाए। तथाकथित धर्म और उसकी सारी रूढ़ियों सहित, उसके समस्त निरर्थक प्रलापों से, फिर वे चाहे लेटिन भाषा में हों या संस्कृत में हों, अपने-आपको अलग कर लिया जाना जरूरी है, ताकि जो है उसके यथार्थ का प्रत्यक्ष रूप से सामना किया जा सके।

इसलिए हमें यह अन्वेषण-यात्रा साथ-साथ करनी होगी - यह कोरी बौद्धिक या सैद्धान्तिक चर्चा बनकर न रह जाए, वार्ता को सुनकर केवल शाब्दिक अर्थ ग्रहण कर यह समझ लेना उचित न होगा कि शायद आप इसमें कुछ प्राप्त कर सके हैं, वैसा करना बिलकुल व्यर्थ है। अन्वेषण करना और इस अन्वेषण के कृत्य में ही अपने नित्य-प्रति के जीवन में मौलिक रूपान्तरण घटित होने देना ही सार्थक है। क्योंकि यही वह नींव है जिसकी बुनियाद पर हमारे दिन-प्रतिदिन जिए जानेवाले जीवन का - उसकी यातना, उसकी ऊब, उसके अकेलेपन, उसके भय और उसके अदृश्य भविष्य का निर्माण किया जा सकता है। हमारा दिन-प्रतिदिन का जीवन ही वह चीज़ है जिसकी जाँच-पड़ताल, जिसका अन्वेषण हमें करना चाहिए।

अन्वेषण कर सकने के लिए आपमें अत्यन्त उत्साह होना चाहिए, आपमें प्रचण्ड प्राण-शक्ति, ऊर्जा होनी चाहिए। और हममें से इने-गिने लोगों में ही इतनी ऊर्जा होती है, इतना अधिक उत्साह होता है कि हम खोजबीन कर सकें, क्योंकि हम अल्प में ही संतुष्ट हो जाया करते हैं। हममें से अधिकतर लोग अपने परिवार से, अपनी नौकरी से, अपने नित्य-प्रति के जीवन की एकरसता से, अपने अकेलेपन से, अपने आसपास की हर-एक चीज़ से असन्तुष्ट हैं। जब हम पूरी तरह असन्तुष्ट हो जाते हैं तो किसी

संस्था के माध्यम से, समाज सुधार, राजनीतिक या धार्मिक सुधार के बहाने से कुछ-न-कुछ करते रहने में संलग्न हो जाते हैं। या, यदि वैसी किसी गतिविधि में संलग्न नहीं होते तो उस प्रकार से स्वयं के ही भीतर चले जाते हैं जैसा कि साधुओं, तपस्वियों के बारे में सोचा जाता है। परन्तु साधु भी अपने भीतर बिलकुल नहीं जाते, बस बाहर से यह अवश्य जान पड़ता है कि वे एक सरल जीवन व्यतीत कर रहे हैं। परन्तु वास्तविक अर्थ में सरल जीवन की शुरुआत तब होती है जब आप विवेकहीन विश्वासों, सिद्धांतों और प्रभुत्व आदि को छोड़ चुके होते हैं - उसी स्थिति में आप अपने भीतर जा सकते हैं। परन्तु अपने अन्तर में प्रवेश कर पाना बहुत कठिन होता है, इसके लिए ऊर्जा की जरूरत होती है। और जैसा कि कहा जा रहा था, बहुत इने-गिने लोगों में ही इस प्रकार की ऊर्जा हुआ करती है।

यह देखना आसान है कि ऊर्जा तब उत्पन्न होती है जब घर्षण होता है, प्रतिरोध होता है, अपने आपसे युद्ध होता है, जब द्वन्द्व होता है - उससे एक तरह की ऊर्जा पैदा होती है। आप कुछ चाहते हैं, आप उसके लिए प्रयत्न करते हैं। आप व्यथित हैं, आप खिन्न हैं, अपने पति से या पत्नी से आपकी अनबन है, आप लड़ते-झगड़ते हैं और उस प्रतिरोध से, उस लड़ाई से एक तरह की ऊर्जा उत्पन्न होती है जो वस्तुतः घृणा, ईर्ष्या, लोभ होती है। और उससे आपका असंतोष आसानी से शान्त हो जाता है। आपके असंतोष को एक ऐसी राह मिल जाती है जिसके द्वारा आप स्वयं को या अपनी आशाओं को संतुष्ट अथवा अपने भयों को दूर कर लेते हैं और शीघ्र ही संतुष्ट हो जाया करते हैं। परन्तु इस असंतोष को इसके चरम पर बनाये रखने के लिए, इसे उत्तप्त और प्रज्वलित बनाये रखने के लिए, इसकी संतुष्टि हेतु कोई राह न खोजने के लिए, इसे प्रखरतः प्राणवान बनाए रखने के लिए, अपने भीतर खोज की जानी होती है और उस ऊर्जा का आविष्कार करना होता है जो किसी प्रयोजन के लिए नहीं होती।

और आज शाम को, हो सके तो हम यही करने जा रहे हैं। हम अपने लिए स्वयं ही यह खोजने जा रहे हैं कि क्या ऐसी उत्कंठा, ऐसी ऊर्जा, जीवन का सरलतापूर्वक अवलोकन कर सकने की ऐसी कोई दृष्टि होती है जो संघर्ष से, अन्तर्द्वन्द्व से रहित हो और किसी उद्देश्य से प्रेरित न हो। इसे खोजने के लिए अपने भीतर जाना होता है। और अपने भीतर जाने के लिए बाहरी क्रियाकलापों को गहराई से समझना आवश्यक है क्योंकि इसके बाद भीतर की ओर जाना संभव होता है। संसार को, समाज को समझे बिना, एक मनुष्य के नाते संसार से, समाज से, अपने संबंध को समझे बिना, अपनी नौकरी, अपनी पत्नी, अपने परिवार, अपने शब्द, अपने हाव-भाव को गहराई से समझे बिना आप भीतर की यात्रा प्रारम्भ नहीं कर सकते। और यह कर पाना अत्यन्त कठिन है। जीवन में सरल कुछ भी नहीं है। परन्तु हममें से ज्यादातर लोग तुरंत उत्तर चाहते हैं, इन सब चीजों से जल्दी से जल्दी छूटना और किसी असाधारण रूप से रहस्यपूर्ण अलौकिक अवस्था को पा लेना चाहते हैं जो पूरी तरह भ्रामक है।

इसलिए हमें अपने बाहरी क्रियाकलापों की सार्थकता और महत्त्व का पता लगाना प्रारम्भ करना चाहिए, क्योंकि एकमात्र वही पैमाना हमारे पास है। उस कसौटी पर आप स्वयं को धोखा नहीं दे सकते। चाहे आप घृणा करते हों, आप ऊब चुके हों, चाहे आप अन्य लोगों से या अपने-आपसे छल कर रहे हों, चाहे आप भयभीत हों,

चाहे आप सुखी हों, इस संसार में अपनी स्वकेन्द्रित गतिविधि से चाहे आप कुछ सृजित कर रहे हों तो भी, यदि इसे जाँचने के लिए आपके पास बाहर की कोई कसौटी न हो तो आप अपने स्वयं के भीतर कैसे जा पाएंगे, और उसके सारे छलावों, प्रयोजनों और उसकी उद्विग्नताओं सहित उस सर्वाधिक असाधारण तथा जटिल सत्ता का आविष्कार आप कैसे कर सकेंगे ?

अतः अपने भीतर और अन्तरतम तक जा सकने हेतु आपको अपने से बाहर देखना होगा और इसका पता लगाना होगा। अर्थात् जिस तरह से ज्वार का पानी बाहर की दिशा में जाता है और वही पानी पुनः भीतर लौटता है, उसी तरह से हमें बाहर जा रहे ज्वार पर सवार होकर, संसार से अपने संबंध की दिशा में, बाहर की ओर जाना होगा और उसे समझ लेने के पश्चात् उसी पर सवार होकर पुनः भीतर जाना होगा।

इसलिए संसार के साथ आपके संबंध पर आपको दृष्टि रखनी होगी। आपके संबंध की शुरुआत परिवार से, पत्नी से, पति से, बच्चों से, अर्थात् जिस संसार में आप रहते हैं वहीं से होती है। आपको अपने संबंध के बारे में जानना होगा, आपको इसका पता लगाना होगा कि वह किस बुनियाद पर टिका है, और इस विषय में आपको स्वयं से धोखा नहीं करना है। वास्तव में इसकी बुनियाद किस पर रखी होती है? आदत पर या किसी निश्चित परम्परा पर या एक संकीर्ण दायरे के भीतर जिसमें हम जीते हैं। परिवार पति-पत्नी और बच्चों से मिलकर बना होता है और उसके अन्तर्गत हम काम-संबंधों, भावात्मक-संबंधों के माध्यम से, या तो शासित किये जाते हैं या किसी पर शासन कर रहे होते हैं, वहाँ पर हम किसी पर आश्रित होते हैं।

कृपया स्वयं का अवलोकन करें। ढेर सारे शब्दों को सुन लेना भर पर्याप्त नहीं होता। अच्छे शब्द-भण्डार से आप विद्वान तो बन सकते हैं परन्तु वे आपको बहुत दूर नहीं ले जाते। परन्तु शब्द आपके अपने संबंधों की वस्तुस्थिति के, आपके संबंध जैसे वास्तव में हैं उसके सूचक तो अवश्य होते हैं - आपकी पत्नी से, आपके बच्चों से आपके संबंध कैसे होने चाहिए, वे इसके नहीं, बल्कि वास्तविक तथ्य के सूचक होते हैं। इसके पश्चात् वहाँ से आगे बढ़ा जा सकता है।

परिवार समाज के विरोध में होता है, परिवार मानव-मानव के संपूर्ण पारस्परिक संबंध के विरोध में होता है। यह वैसी ही बात है जैसे कोई एक बहुत बड़े मकान के एक छोटे से कमरे में रहता हो, और पूरे मकान की अपेक्षा उस छोटे कमरे को अर्थात् परिवार को अत्यधिक और असाधारण महत्त्व देने लगे। उस पूरे मकान के परिप्रेक्ष्य में जितना महत्त्व उस कमरे का होता है परिवार का महत्त्व भी उतना ही होना चाहिए। उस एक कमरे का जैसा संबंध पूरे मकान से होता है, वैसा ही संबंध परिवार का संपूर्ण मानव-अस्तित्व से होता है। परन्तु हम इसे अलग कर लेते हैं, इसे कसकर पकड़ रखते हैं। हम परिवार को - मेरे रिश्ते-नाते, आपके रिश्ते-नाते इस भेद को - अनावश्यक गौरव प्रदान करने लगते हैं, और एक-दूसरे से अनवरत झगड़ते रहते हैं। परन्तु वस्तुतः परिवार का महत्त्व उतना ही होता है जितना किसी बड़े मकान में एक छोटे से कमरे का। जब हम पूरे मकान को भूल जाते हैं तो वह छोटा सा कमरा बेहद महत्त्वपूर्ण हो जाता है, इसी प्रकार संपूर्ण मानव-अस्तित्व को भूल जाने पर परिवार अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। केवल संपूर्ण मानव-अस्तित्व

के परिप्रेक्ष्य में ही परिवार का कोई महत्त्व होता है, उसके बिना तो परिवार एक भयावह और भीषण वस्तु है।

इसलिए प्रत्येक को, वास्तविक संबंध क्या है, इस सत्य का स्वयं ही पता लगाना होगा और उस प्रकार के संबंध की कसौटी पर आपके पड़ोसी से, संसार से, और उन असामान्य लोगों से, जो झगड़ालू, शरारती, अशिष्ट, बर्बर या आततायी प्रवृत्ति वाले हैं - आपका क्या संबंध है, इसकी खोज आपको करनी होगी।

इसके साथ-साथ काम भावना भी एक समस्या है जो कि अधिकांश लोगों के जीवन में आश्चर्य की सीमा तक महत्त्वपूर्ण बन जाया करती है - एक अत्यन्त जटिल वस्तु बन जाया करती है। जैसा कि पिछले दिनों हमने कहा था, चूँकि हम अपने-आपको तनावमुक्त करने के अन्य कोई तरीके नहीं खोज पाते हैं, इसलिए हम इस एक चीज़ की ओर, काम वासना की ओर आकर्षित हो जाते हैं और इसे एक विकट समस्या बना देते हैं। और भले ही हम कहते हों कि हम अपने परिवार से प्रेम करते हैं परन्तु वस्तुतः हमें परिवार से प्रेम नहीं होता, हमें अपने बच्चों से प्यार नहीं होता - वास्तव में हम प्रेम करते ही नहीं। जब आप कहते हैं कि आप अपने बच्चों से प्यार करते हैं, तो आपका तात्पर्य वास्तव में यह होता है कि वे आपके लिए खिलौनों की तरह हैं, जिनसे आप मन को बहला लेते हैं, आप इस मन बहलाव के आदी हो चुके हैं। परन्तु यदि आप किसी चीज़ से सचमुच प्यार करते हैं तो आप उसकी वास्तव में देखभाल करते हैं।

आप जानते हैं देखभाल करना क्या होता है? यदि आप देखभाल करना जानते हैं तो आप जब कोई पौधा लगाते हैं तो उसकी चिन्ता भी करते हैं, आप सावधानी से उसकी रक्षा करते हैं, आप उसे पोषण देते हैं, उसके लिए उचित प्रकार की मिट्टी की व्यवस्था करते हैं, उचित तरह की खाद देते हैं, आप उसका खयाल रखते हैं, उस पर अनवरत अपनी दृष्टि रखते हैं। मुझे नहीं पता कि आपने कभी कोई पौधा लगाया है या नहीं, कोई पौधा रोपकर दिन-प्रतिदिन उसका ध्यान रखा है या नहीं। पौधा लगाने के लिए आपको मिट्टी को गहराई तक खोदना होता है, फिर यह देखना होता है कि वह मिट्टी पौधे के लिए अनुकूल है या नहीं। फिर आप पौधा रोपते हैं, उसका प्रतिदिन ध्यान रखते हैं, उसका उसी तरह खयाल रखते हैं जैसे वह मानों आपका अपना हिस्सा हो। परन्तु बच्चों से आप इस ढंग से प्यार नहीं करते। यदि आपको उनसे प्यार होता तो हमारी शिक्षा व्यवस्था जैसी अभी है उससे नितान्त भिन्न प्रकार की होती। तब युद्ध न होते, गरीबी न होती। तब मन को केवल तकनीकी कुशलता के लिए ही प्रशिक्षित न किया जाता। तब प्रतिस्पर्धा की, राष्ट्रीयता की बातें न की जाती। और यह सब इसलिए होने दिया जा रहा है क्योंकि हम प्रेम नहीं करते।

इसलिए हमें अपने बिलकुल पास से शुरू करना होगा, और वहीं से अपने मन और अपने पूरे अस्तित्व की वास्तविक स्थिति को उद्घाटित करना होगा। और यह कर पाना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि तब हमें अपने-आपमें ही, चेतन तथा अचेतन तल पर भी कितनी ही अशोभनीय बातों का पता चलने लगता है। और हम उनका सामना नहीं कर सकते, बल्कि हम किसी मंदिर की ओर या किसी चर्च की ओर अथवा सिनेमा या किसी प्रकार के सामूहिक मनोरंजन की ओर भाग जाना अधिक पसंद करते हैं, जबकि मंदिर अथवा चर्च भी सामूहिक मनोरंजन का ही एक रूप होता है। और, किसी वस्तु का प्रत्यक्ष तौर पर सामना करने के लिए ऊर्जा की जरूरत भी

होती है। यदि आप निरंतर और अकारण ही झगड़ते रहते हैं तो आपके पास कुछ भी ऊर्जा शेष नहीं रह जाती और हममें से अधिकांश यही कर रहे हैं।

किसी चीज़ की प्रतिदिन और प्रति मिनट, अनवरत, अत्यन्त गहनता से विवेचना करने के लिए जिस प्रकार की उत्कंठा और ऊर्जा का होना आवश्यक होता है, वह उत्कंठा और ऊर्जा घटित करने के लिए कुछ बातें करना बिल्कुल ज़रूरी है। हमारा आहार सही प्रकार का हो, हम जीभ के स्वाद के लिए न खाएँ। आप स्वयं इस बारे में अध्ययन कर पता लगा सकते हैं कि सही ढंग का भोजन कैसा होता है, इस बारे में हमें चर्चा करना अनावश्यक होगा। फिर यह समझा जाना भी ज़रूरी है कि आज्ञापालन करने की प्रवृत्ति क्या होती है। हममें से अधिकांश आज्ञापालन करने के लिए तैयार रहते हैं। जो मनुष्य आसानी से या बहुत कठिनाई से आज्ञापालन के लिए राजी रहता है उसमें सत्ता-प्राप्ति की लालसा होती है। कृपया इसको समझें। आपको किसी की आज्ञा का पालन करना क्यों ज़रूरी है? फैक्टरी अथवा ऑफिस में आप अपने अधिकारी की आज्ञा का पालन इसलिए करते हैं क्योंकि ऐसा न करने पर आपकी नौकरी जा सकती है। यदि आप यह प्रदर्शित करते हैं कि अपने अधिकारी की तुलना में आप अधिक चतुर हैं तो भी आप अपनी नौकरी से हाथ धो सकते हैं, और उस नौकरी को पाने के लिए कई सारे लोग तैयार ही बैठे हैं। इस प्रकार आपमें यह भय उत्पन्न हो जाता है और आप आज्ञापालन करते हैं। क्रमशः आपकी बुद्धि क्षीण होने लगती है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य सत्ता पाना चाहता है, पद, सम्मान, प्रतिष्ठा पाना चाहता है। ठीक से देखिए, अपने दैनिक जीवन में आप यही कर रहे हैं, रोज यही कर रहे हैं।

आपका मतलब केवल कार्य भर से नहीं होता, बल्कि उस कार्य का इस्तेमाल आप प्रतिष्ठाप्राप्ति के लिए करते हैं। और तब वह कार्य उतना महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाता जितनी कि उसके माध्यम से आपको मिल रही प्रतिष्ठा। इस प्रकार आप अपनी कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए मेहनत करना छोड़कर इसलिए संघर्षरत हो जाते हैं कि आपको कोई और बड़ा अधिक महत्त्वपूर्ण पद, सत्ता, सम्मान या उच्चतर स्थान मिल सके। इसलिए कार्यकुशलता बढ़ाने के स्थान पर, पद प्राप्ति के लिए प्रतिस्पर्धा शुरू हो जाती है। अतः हममें से अधिकांश लोग इसलिए आज्ञापालन करने लगते हैं क्योंकि हम सत्ता, अधिकार, पद चाहते हैं और आज्ञापालनरूपी सीढ़ी से क्रमशः चढ़ते हुए हम उस उच्चतर स्थान तक पहुँच जाना चाहते हैं। हालाँकि इस प्रकार से हमारी अकार्यक्षमता बढ़ेगी, आज्ञाकारिता बढ़ेगी, तथा उससे जुड़ा भय भी बढ़ेगा।

धार्मिक मन क्या है, इसे जान पाने के लिए आपको न केवल यह समझना होगा कि स्वयं से अपने परिवार का, स्वयं से अपने समाज तथा समाज से परे की अन्य सभी चीज़ों का क्या संबंध है, बल्कि सत्ताप्राप्ति की तृष्णा की उस संपूर्ण प्रक्रिया को भी समझना होगा जो मूलतः परिवार में या समाज में वर्चस्व पाने का, या किसी धार्मिक अथवा ऐसी ही किसी अन्य संस्था में प्रभुतापूर्ण अधिकार पाने का ही कोई प्रकार होती है।

इसलिए प्रभुत्व की इस संपूर्ण प्रक्रिया को, जिसमें कायदा-कानून भी है, मन के द्वारा समझा जाना ज़रूरी है। यह ठीक है कि आपको कानून का पालन करना चाहिए, यहाँ भारत में आपको सड़क पर चलते समय अपनी बाँई ओर से चलना है, आपको उचित डाक टिकट खरीदना है। परन्तु वर्चस्व के अन्य प्रत्येक प्रकार, जैसे

मनोवैज्ञानिक प्रभुत्व, को पूरी तरह से समझ लिया जाना आवश्यक है, ताकि मन कभी किसी भी प्रकार के प्रभुत्व को पाने में उत्सुक न रहे।

इस प्रकार से कोई भी स्वयं ही धार्मिक मन के स्वरूप की खोज करना आरंभ कर सकता है। यह संभव है कि उसका कोई परिवार हो, परन्तु उसे भी संपूर्ण के सन्दर्भ में ही देखा जाना चाहिए, पृथक रूप में नहीं। और चूँकि यह संपूर्ण से पृथक नहीं है इसलिए इसकी भी देखभाल की जानी चाहिए, इसका भी खयाल रखा जाना जरूरी है। और तब एक पूर्णतः भिन्न प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था की आवश्यकता तीव्रता से अनुभव होने लगती है। इस प्रकार इस जाँच-पड़ताल से, जिसे हमने बहुत समीप की चीज़ों से प्रारंभ किया, हम सत्ता प्राप्ति की, प्रभुत्व की उस लालसा को और आज्ञाकारिता की उस विवशता को भी स्पष्ट रूप से समझने लगते हैं जो स्वयं को अनेक रूपों में व्यक्त करती रहती है, जो कुछ विशेष लोगों के प्रति तो आदर के रूप में परन्तु शेष सारे लोगों के प्रति अनादर के रूप में प्रकट होती रहती है। यदि आप किसी का अनादर नहीं करते तो आपको किसी का आदर करना भी जरूरी नहीं रहता।

इस तरह बाहर से प्रारंभ करते हुए, बाहरी चीज़ों के प्रति सजग होते हुए, वृक्षों के, गरीबी के, गरीबी के कारणों के, संपूर्ण सामाजिक और आर्थिक ढाँचे के प्रति, वह जिस भी तरह का है - उस रूप में उसके प्रति जागरूक रहते हुए, उन बाहरी चीज़ों को भलीभाँति समझते हुए, हम क्रमशः अपने अंतरंग के प्रति भी सजग और सचेत होना प्रारंभ कर सकते हैं।

जब हम 'समझना' शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा तात्पर्य विश्लेषणात्मक, बौद्धिक या शाब्दिक समझ भर से नहीं होता बल्कि उस समझ से होता है जो रग-रग से होती है, जो अपने पूरे हृदय से, मन-प्राण से और अपनी समग्रता के तल पर होती है। और अपने परिवार से आपका जो संबंध है, सत्ता, पद, प्रभुत्व, प्रतिष्ठा आदि से आपका जो संबंध है, उसे आपको इसी अर्थ में समझना है।

तब आप अपने भीतर जा सकते हैं। और अपने भीतर जाने के लिए सर्वप्रथम जिस प्रमुख बात को समझा जाना जरूरी है, वह है अपने-आप के प्रति बेहद ईमानदार होना ताकि किसी धोखे की कोई संभावना न रहे। हम स्वयं को आसानी से धोखा दे दिया करते हैं! हम इस ओर ध्यान ही नहीं देते। इस ओर ध्यान देने की बजाय हम किन्हीं अलौकिक चीज़ों की जैसे ईश्वर की, गूढ़ सिद्धान्तों की या आत्मा आदि की चर्चा करना अधिक पसंद करेंगे।

आप जानते ही होंगे कि किसी कमरे में प्रवेश करते समय आप किन्हीं दार्शनिक विषयों पर 'क्या यह सच है या वह सच है' आदि सोचते रहते हैं और फर्नीचर की ओर, फर्श पर बिछी कालीन पर, फूलों की ओर या खिड़की के आकार पर आपकी नजर ही नहीं जाती, आप उन विषयों पर सोचने में इतने खोए हुए होते हैं कि आप और कुछ देख ही नहीं पाते। देखना बहुत जरूरी है, हर चीज़ का अवलोकन किया जाना चाहिए, सूर्यास्त को देखिए, सूर्यास्त की पृष्ठभूमि सहित उस वृक्ष को देखिए, अंधकार को देखिए, केज्यूअरीना की नाजुक शाखाओं के फैलाव को, उसके तने से, उसकी पत्तियों से आ रहे आलोक को देखिए। और यदि आप उस सबका अवलोकन नहीं करते तो आप इसे भी नहीं देख पायेंगे। यदि आप अपने से बाहर की ओर नहीं देख पाते, तो आप अपने भीतर भी नहीं झाँक सकते हैं। और हम जीवन के

बाह्य-सौन्दर्य को नकारते हुए, बाह्य को अस्वीकार करते हुए अपने भीतर देखने का प्रयास करते रहे हैं। सभी संतों ने, आपके तमाम साहित्य ने जीवन के सौन्दर्य की चर्चा कभी नहीं की, वे आपको बस यही बतलाया करते हैं कि इस क्लेश से दूर कैसे भागा जा सकता है।

जबकि जीने में एक गहन सौन्दर्य है। और प्रकृति में, किसी वृक्ष को देखने में, उस वृक्ष से एकात्म होने में इस सौन्दर्य को प्रत्यक्ष देखा जाता है। और यदि आप यह न जानते हों कि वहाँ इसको किस प्रकार देखा जाता है, बाहरी तौर पर आप जिस तरह से चलते हैं, आप जो कुछ कह रहे होते हैं, आपके हाव-भाव जो होते हैं, आप जिस ढंग से आदर और अनादर प्रकट करते हैं - यदि आप उसका अवलोकन करना नहीं जानते तो फिर आप अपने भीतर कैसे देख सकेंगे ? अतः आपको बाहरी तल से ही देखने की शुरुआत करनी होगी, इसके बाद आप अपने भीतर जा सकेंगे।

और अवलोकन के लिए भ्रान्ति का न होना ज़रूरी है। वह कौन सी शक्ति है जो भ्रान्ति उत्पन्न करती है, जो धोखा पैदा करती है ? आप समझ रहे हैं ? हम अपने को धोखा क्यों देते हैं ? हम मुखौटा क्यों लगाते हैं ? आप जानते हैं मुखौटा क्या होता है ? जब किसी व्यक्ति के पास बहुत अधिक तकनीकी कुशलता और दक्षता होती है, जब उस प्रकार का बहुत ज्ञान उसके पास होता है तो वह उसका मुखौटा हो जाता है, वह उसे लगाये रखता है। वह यह नहीं जानना चाहता कि उस मुखौटे के पीछे क्या है। हो सकता है कि वह एक उच्च-कोटि का इंजीनियर हो, कोई उच्च-पदासीन अफसर हो, और वही उसका मुखौटा होता है। वह मुखौटा उसे प्रतिष्ठा प्रदान करता है और उसके कारण दुनिया उसे प्रशंसा की दृष्टि से देखती है। परन्तु उस मुखौटे को हटाते ही वह वैज्ञानिक हो या खगोल शास्त्री हो, वह किसी भी अन्य साधारण मनुष्य जैसा ही होता है।

इसलिए प्रत्येक को स्वयं ही पता लगाना होगा कि वह शक्ति क्या है, वह कौन-सी ऊर्जा है जो धोखे को पैदा करती है। आप जानते हैं न कि *धोखा* से मेरा क्या मतलब है? यह न देखना कि वास्तविकता में (सैद्धांतिक रूप से नहीं) हम क्या हैं। हम क्या हैं इसे स्पष्ट रूप से देखने में समर्थ न होना। और ऐसा इसलिए होता है कि हम भयभीत हैं - क्योंकि हम जो हैं उसे किसी उदात्त रूप में या ऐसे ही अन्य किसी रूप में बदलना चाहते हैं, उसे हम सर्वश्रेष्ठ बनाना चाहते हैं, हम सब-कुछ बनना चाहते हैं।

इसलिए भ्रान्ति के कारण की शुरुआत तभी हो जाती है जब आप जो है उसे बदलना चाहते हैं, जब आप जो है उससे असंतुष्टि अनुभव करने लगते हैं। हम उस बारे में विवेचना करेंगे ही। परन्तु इससे पहले हम आपसे यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि किसी भी तरह की भ्रान्ति का निवारण करना कितना जरूरी है और वे कौन से कारण हैं जो भ्रान्ति को जन्म देते हैं, ताकि आपका मन स्पष्टता के साथ देख सके।

हममें से अधिकांश लोग भ्रान्ति में जीते हैं, अर्थात् वे सतही ढंग से जीते हैं। यदि हमारे पास रुपया-पैसा है तो बस मनोरंजन करते रहना, दिन-प्रतिदिन दफ्तर जाते रहना, सतही चीज़ों में जीते चले जाना, और कभी इस सब पर सवाल न उठाना - वह भी एक प्रकार का धोखा ही है। क्योंकि हम केवल रोटी से नहीं जीते, अन्य तलों पर, अस्तित्व के गहनतर तलों पर भी जीते हैं। परन्तु यदि हम उस सबको नकारते हैं तो भी हम स्वयं को धोखा देते हैं। इसलिए यह जरूरी है कि

अपने-आपको भ्रमित करनेवाली इस शक्ति के प्रति सतर्क हुआ जाये। और स्वयं को भ्रमित करनेवाली इस शक्ति का, धोखे का तब अन्त होता है, जब कोई और ध्येय नहीं रहता, जब किसी ध्येय की प्राप्ति की इच्छा नहीं रहती और आप जब केवल यथार्थ से यथार्थ की दिशा में चलते हैं।

और अपने-आप पर दृष्टि डालना तभी संभव होता है जब भ्रान्ति इसमें बाधा नहीं बनती। इसके लिए जरूरी है कि आप निःशब्द होकर देखें, आप अपने स्वयं के अतीत की स्मृति के अनुसार रूपान्तरित करने की इच्छा से मुक्त रहकर देखें। और ऐसा कर पाना, इस प्रकार से देख पाना - किसी वृक्ष को, किसी स्त्री को, किसी पुरुष को, गंदगी को - इस तरह से केवल अवलोकन भर कर पाना सर्वाधिक कठिन और श्रमसाध्य कार्य है।

यदि आप बिना व्याख्या किये, बिना रूपान्तरित किये अवलोकन कर सकते हैं तो आप पायेंगे कि आपके पास विपुल ऊर्जा है। जबकि अभी उस ऊर्जा का अपव्यय व्याख्या करने में, जो कुछ आप देखते हैं उसे प्रिय या अप्रिय में परिणत करने में, या तो फिर उसे आपके सामाजिक, आर्थिक या नैतिक ढाँचे के अनुसार परिवर्तित करने के प्रयास में हो रहा है।

अतः, जो है उसे बदलने की इच्छा करना ऊर्जा का अपव्यय करना है। जबकि यदि आप जो है को यथार्थ स्वरूप में देखते हैं, यदि अपने क्रोध को, अपनी ईर्ष्या को, अपनी वासना को, अपनी हिंसावृत्ति को आप उसकी व्याख्या न करते हुए उसके यथार्थ स्वरूप में देखते हैं, तो आपमें ऊर्जा होती है।

धार्मिक मन वह मन है जिसमें किसी भी प्रकार की भ्रान्ति नहीं होती, जिसमें प्रतिष्ठा या सत्ता की कोई कामना नहीं होती। और धार्मिक मन परिवार से और मनुष्य मात्र से अपने संबंध को समझता है। ऐसा मन गहराई तक जाकर खोजबीन कर सकता है। हमारे पास बुद्धिरूपी यंत्र ही होता है - कम से कम ऐसा कहा जाता है। परन्तु अवलोकन के रूप में भी एक यंत्र है, जिसका तात्पर्य है - विचार की हर गतिविधि का अवलोकन करना, भावना की प्रत्येक गतिविधि का अवलोकन करना और इस तरह से, छिपे हुए भय को, उन कामनाओं को जिन्हें कभी देखा न जा सका हो, जिन्हें जानने का कभी प्रयास न किया गया हो उन पर से आवरण हटा देना। और जैसा कि हम कह चुके हैं खोजने के लिए प्रचुर ऊर्जा की जरूरत होती है। और जब आप अपने सामने प्रकट हुए आविष्कार के साथ-साथ चलते हैं, जो कुछ आप देखते हैं उसकी अतीत के सन्दर्भ में व्याख्या नहीं करते - उसे अतीत के रंग में नहीं रंगते, तब यह ऊर्जा फूट निकलती है।

क्या आपको इस बात पर कभी आश्चर्य नहीं हुआ कि वैज्ञानिकों में कैसी असाधारण ऊर्जा होती है? यदि आप किसी प्रयोगशाला में जायें, यदि आप कभी वैज्ञानिक शोध-कार्य करनेवाली किसी उच्चस्तरीय प्रयोगशाला में जायें तो देखेंगे कि वैज्ञानिक ऊर्जा से पूरी तरह भरा हुआ और बहुत सक्रिय होता है। चूँकि वह किसी बाहरी वस्तु का अध्ययन कर रहा होता है अतः उसमें कोई प्रतिरोध नहीं होता, वह तथ्य से तथ्य की ओर गतिशील रहता है, वह सिद्धान्तों में, परिकल्पनाओं में, अनुमानों में लिप्त नहीं रहता, वह सिद्धान्तवादी नहीं होता। वह निर्दोष दृष्टि रखनेवाला शुद्धतः तकनीकी रूप से कुशल एक व्यक्ति होता है और हर चीज़ को सूक्ष्मदर्शी के नीचे रखकर देखता है। इसलिए वहाँ पर, प्रयोगशाला में उसमें विपुल

ऊर्जा हुआ करती है। परन्तु वहाँ से बाहर निकलते ही वह भी किसी भी अन्य व्यक्ति जैसा ही उद्विग्न, पदप्राप्ति के लिए संघर्ष करनेवाला, प्रतिस्पर्धा करनेवाला, राष्ट्रवादी, धार्मिक मान्यताओं में जकड़ा या स्वयं अपने ही द्वारा बनाये गये विशिष्ट विश्वासों से ग्रस्त एक साधारण मनुष्य हो जाता है। इस तरह से वहाँ भी ऊर्जा का अपव्यय होता रहता है।

और अवलोकन के लिए मन पूर्णतः निःशब्द, शान्त होना चाहिए। क्योंकि जब एक वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शी-यंत्र से कुछ देख रहा होता है तो वह ज्ञान के माध्यम से नहीं बल्कि मौन से देखता है। हालाँकि इस प्रकार से वह जो कुछ देखता है उसे ही बाद में ज्ञान के माध्यम से व्यक्त करता है। परन्तु अवलोकन तो निःशब्दता से ही होता है - हाँ यह संभव है कि यह निःशब्दता एक छोटे से पल के लिए, या फिर घंटे भर के लिए रहती हो। लेकिन अवलोकन का एकमात्र तरीका यही है।

किन्तु एक निःशब्द, नीरव चित्त का *संवर्धन* करने का प्रयास नासमझी है। इसके लिए प्रयास नहीं किया जा सकता, और प्रयास के द्वारा निःशब्द मन की प्राप्ति नहीं होती। परन्तु देख पाने के लिए, अवलोकन करने हेतु आपको निःशब्द होना होगा। आप उस सूर्यास्त को अवश्य देखिए। यदि आपके मन की बड़बड़ाहट जारी है तो आप उसे नहीं देख सकते, उस स्थिति में आप सूर्यास्त को नहीं देख सकते। उसे आप पूरी तरह से केवल तभी देख सकेंगे जब आपका मन असाधारण रूप से मौन और उत्कट हो। क्योंकि वह तो सौन्दर्य ही है। तात्पर्य यह कि सौन्दर्य अथवा सौन्दर्यहीन का बोध हो पाना तभी संभव होता है जब आपमें उत्कटता हो, जब आप सूर्यास्त को पूरी तीव्रता के साथ देखें। और यदि आप निःशब्द नहीं हैं तो आपमें उत्कटता न होगी। इस प्रकार आप यह देखते हैं कि जब आप अवलोकन कर रहे होते हैं तो मन किस प्रकार असाधारण रूप से निःशब्द हो जाया करता है। जब आप अवलोकन करते हैं तो मन को निःशब्द करने के लिए आप उसे अनुशासित नहीं करते, और यदि आप उसे अनुशासित करते हैं तो आपका मन निष्प्राण होकर रह जाता है। परन्तु जो मन निःशब्द रहकर अवलोकन करता है वह स्वयं अपना अनुशासन सृजित कर लेता है - उसे अनुशासित नहीं होना पड़ता, क्योंकि वह अवलोकन कर रहा होता है।

निःशब्दता में से होनेवाला यह अवलोकन ही उत्साह है, ऊर्जा है। तब आप अपने भय का अवलोकन कर सकेंगे। अधिकतर लोग भयभीत होते हैं, वे मृत्यु के डर से, इस रिक्त और अर्थहीन जीवन से डरे हुए रहते हैं। जबकि जरूरी यह है कि उस भय से सम्पर्क किया जाये और किसी भी तरह की चेष्टा किये बिना, उससे परे जाने या उसके प्रतिरोध का प्रयत्न न करते हुए, उससे छुटकारा पाने की कोशिश न करते हुए उसका अवलोकन किया जाये। उससे परे जाना, उसे जीत लेना या उसका दमन करना ऊर्जा का अपव्यय है। जबकि यदि आप भय की सम्पूर्ण गतिविधि का अवलोकन करते हैं तो निःशब्दता के माध्यम से किया जानेवाला यह अवलोकन आपको ऊर्जा प्रदान करता है और तब भय की समस्या का अन्त हो जाता है।

अतः यह आवश्यक है कि हमारी नित्य-प्रति की घटनाओं का अवलोकन किया जाये। जब हम *अवलोकन* शब्द का इस्तेमाल करते हैं तो इसका तात्पर्य वह अवलोकन है जो आलोचनात्मक नहीं होता, जो असंतोष या समायोजन अथवा दमन का फल नहीं बल्कि निःशब्दताजनित अवलोकन होता है, जो केवल तथ्य का अवलोकन होता

है, जो तथ्य का विरूपण या तथ्य के संबंध में दिया जानेवाला कोई मत नहीं होता। तब आप देखेंगे कि इस अवलोकन के अन्तर्गत कुछ करने की, प्रतिरोध करने की, किसी बाधा पर विजय पाने की, या इनकार करने के किसी प्रयत्न की जरूरत ही समाप्त हो जाती है, प्रयत्न पूर्णतया विलीन हो चुका होता है। और फिर भी आपका दैनन्दिन का जीवन - दफ़्तर जाना, रसोई बनाना और दूसरे भी सभी कार्य बिना प्रयत्न किये, स्वाभाविक ढंग से चलते रहते हैं।

धार्मिक मन वह मन है जो परिवार को तथा सारी समष्टि के सन्दर्भ में परिवार की स्थिति को समझता है; जिस मन में सत्ता तथा पद-प्रतिष्ठा की लालसा नहीं है; जो मन किसी धर्म-विधि, किसी धर्म-सिद्धांत, किसी धर्म-विश्वास, किसी संगठित धर्म-संप्रदाय या किसी मंदिर में जकड़ा नहीं है; जिस मन में भ्रांति पैदा करने की शक्ति नहीं है।

वही मन धार्मिक है जो तथ्यों पर दृष्टि रखता है और इसलिए वह जो कुछ भी करता है, उसमें किसी तरह का कोई प्रयास नहीं होता।

इसके बाद और भी आगे जाना है। अर्थात् बाह्य वस्तुओं का अवलोकन करते हुए अन्तर तक पहुँचना। और बाह्य तथा आन्तरिक दो भिन्न अवस्थाएं नहीं होतीं, वे मौन अवलोकन की ही एक दशा हैं।

यह निःशब्दता अन्तराल (स्पेस) है। हम एक अत्यन्त छोटे से अन्तराल में, मन और उसकी कल्पनाओं से निर्मित अन्तराल में जीते रहते हैं। और मन किसी विशिष्ट समाज और संस्कृति में - अपनी स्वयं की ही संस्कारबद्धता का परिणाम होता है, यह एक बहुत छोटे दायरे में रहता है और इसके सारे संघर्ष, इसके समस्त संबंध, इसकी सारी व्याकुलताएँ उसी छोटे से दायरे के भीतर होती हैं। परन्तु अवलोकन के द्वारा मन जैसे ही स्वाभाविक रूप से, सरलतापूर्वक एवं बिना कोई प्रयास किये मौन हो जाता है तो वह छोटा-सा दायरा टूट जाता है। जैसे ही मन परिपूर्णतः मौन हो जाता है, आप देखेंगे कि उस अन्तराल की सीमाएँ नहीं होतीं। तब आप देखेंगे कि वस्तुएँ अन्तराल को निर्मित नहीं करती, अन्तराल स्वतः होता है - अनंत अन्तराल।

और ऐसा जब होता है तब ही वह मन वास्तव में धार्मिक होता है, और उसी मन से क्रियाशीलता का उद्भव होता है। आप परम नागरिक बन सकते हैं - लेकिन किसी मठ में आश्रय पाकर नहीं, संन्यासी बनकर नहीं, एक परिपूर्ण तकनीशियन बनकर नहीं, एक मशीनी मनुष्य बनकर नहीं। उस प्रयासरहित अवलोकन से कर्म का जन्म होता है, और वही एक ऐसा कर्म होता है जो घृणा, शत्रुता, प्रतिस्पर्धा पैदा नहीं करता। इस मौन और अवलोकन के द्वारा आप देखेंगे कि चूंकि वहां अन्तराल है इसलिए प्रेम भी है।

प्रेम का अर्थ है नित्य-प्रतिदिन मरते जाना। प्रेम स्मृति नहीं है, प्रेम विचार नहीं है। प्रेम वह वस्तु नहीं है जो काल के अन्तर्गत अवधि के रूप में चलती रहती है। और यह जरूरी है कि अवलोकन करते हुए हर चीज़ की निरंतरता के प्रति मरते रहें। तब प्रेम अस्तित्व में आता है और उसके साथ सृजन का आगमन होता है।

सृजन उन चीज़ों में से ही एक चीज़ है जिन्हें समझ पाना सर्वाधिक कठिन होता है। एक कवि चाहे जितनी भी सुन्दर या साधारण कविता लिखता हो, यही सोचता है कि वह एक सृजनशील मनुष्य है। जो स्त्री-पुरुष बच्चों को जन्म देते हैं, यही सोचते हैं कि वे बहुत सृजनशील हैं। रोटी बनाने वाला रसोइया भी सोचता है कि शायद वह

सृजनशील है। परन्तु सृजन इससे कहीं बहुत-अधिक बड़ी बात है। जो एक पुस्तक लिख लेता है या अपनी किसी क्षुद्र महत्वाकांक्षा को पूरा कर लेता है, सृजनशील नहीं है। मनुष्य द्वारा स्थापित कोई संरचना-विशेष या मानव-निर्मित तकनीकी ज्ञान और उस ज्ञान का परिणाम, सृजन नहीं है, वह सब तो महज बौद्धिक आविष्कार हैं। वह सब सृजन नहीं है, सृजन तो वह कालातीत वस्तु है जिसमें बीता हुआ या आगामी कल कहीं नहीं होता; सृजन है : काल से परे जीना। और आप यदि अस्तित्व की संपूर्ण समस्या को समझते हैं तो आप इस तक अत्यन्त सहजता से पहुँच जाते हैं।

अतः धार्मिक मन यह सब है और तब यह उस दशा को जानता है, या यह कहना अधिक उचित होगा कि तब यह उस दशा में होता है जो क्षण-क्षण सृजनशील है। यह सदैव रिक्तता के उस असाधारण बोध में स्थित होकर कार्य करता है।

ढोल भीतर से रिक्त होता है, मैं नहीं जानता कि आपने कभी इस बारे में सोचा है या नहीं। जब इस पर आघात किया जाता है तो यह वांछित ध्वनि उत्पन्न करता है। पर अपने-आप में यह बिलकुल रिक्त होता है। हमारे मन कभी रिक्त नहीं होते, वे सदैव पूरी तरह भरे हुए रहते हैं। इसलिए हमारा कृत्य सदैव विचार, स्मृति और निराशा से भरे इस भयानक शोर से उत्पन्न हुआ करता है, और इसलिए हमारा कृत्य हमेशा विसंगतियों से भरा होता है, और हमें सदैव और भी अधिक क्लेशों की ओर ले जाता है।

परन्तु जो मन पूर्णतया रिक्त है, जो अवलोकन के अर्थ में, मौन के अर्थ में रिक्त है और इसलिए वह प्रेम और मृत्यु के अर्थ को गहनता से समझता है, वह सृजनशील है। सृजनशील मन सदैव रिक्त होता है, यह उसी रिक्तता से कार्य करता है, उसी रिक्तता से बोलता है। और इसीलिए यह सदैव सत्य में रहता है, यह अपने भीतर कभी किसी भ्रान्ति को जन्म नहीं देता। और केवल ऐसा धार्मिक मन ही इस संसार में उत्पन्न होनेवाली दुख-क्लेश की समस्त समस्याओं को हल कर सकता है।

मद्रास, ६ जनवरी, १९६५

अनुवाद : विनय वैद्य, सुधाकर देशपांडे
